‘युग–युग में काशी’ शीर्षक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में नामवर सिंह का उद्घाटन भाषण

प्रतिलेखन- निर्मल कुमार पाण्डेय

मुझे मुख्य अतिथि के रूप में यहाँ आमंत्रित किया गया है, जिसके लिए मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, लेकिन इस टिप्पणी के साथ कि मैं तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को अपना घर–परिवार समझता हूँ और परिवार में मेहमान के रूप में आज अपने आप को देखकर विडम्बना का अनुभव करता हूँ। कभी–कभी होता है कि आदमी अपने परिवार में मेहमान बनकर आता है और ये मौका मुझे इतिहास विभाग ने दिया है, मैं वैसे हिन्दी का विद्यार्थी हूँ और इतिहास विभाग ने यह संकेत दे दिया है कि अब आप ‘जैसे इतिहास’ हो गये हैं। अब इस पर हँसू, कि कहूँ, कि रोऊँ मैं; और ऐसा विषय जो बनारस को समझने के लिए आपने आयोजित किया है। बनारस में करीब 25 साल स्थायी रूप से मैं रहा 1941 से 1966 के आस–पास तक और उसके बाद अब भी आता जाता हूँ, छूटा नहीं है, जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै। तो जहाज के पंछी की तरह से बार–बार इस जहाज पर आता रहा हूँ और जहाँ तक इसे समझने का सवाल है, मेरी कुछ ऐसी समझ रही है कि कुछ बातें समझना दिल की बात होती हैं, मुहाल होती हैं और बनारस लगभग चूंकि ये शिव की नगरी है और शिव के बारे में कालिदास ने ‘कुमार संभव’ में एक जगह कहा है कि ‘न विश्व रूप अवधार्य देव पुः’ इस विश्वभूति कोटि की अवधारणा नहीं की जा सकती। जो बात शिव के बारे में कही गई है वह शिव की नगरी के बारे में भी मैं महसूस करता हूँ। इसलिए, कुछ चीजें होती हैं और मेरा ख्याल है कि बेहतर हो बनारस को समझने की कोशिश करने के बजाय महसूस करने की। जो महसूस न करता हो वह समझने का दावा करेगा तो यह एक तरह का किताबी ज्ञान होगा जैसे परायी चीज को आप प्रयोगशाला में ले जाकर के

समझने की कोशिश करते हैं, बगैर इसे महसूस किए हुए जैसे कोई आदमी पर्यटक के रूप में आये और किताब लिखकर चला जाए। बहुत से लोगों ने समझा है इसे और समझने–समझाने के लिए बनारस पर बहुत सी किताबें लिखी गई हैं और इसमें ज्यादा महत्वपूर्ण पुस्तकें तो खैर भारतीयों की तो हैं ही लेकिन भारतीयों से ज्यादा विदेशियों ने किताबें लिखी हैं। बहुत पहले हेबर ने एक किताब वाराणसी के बारे में लिखी थी। इधर की लिखी गई किताबों में 'डायना एल0 एक' की किताब आप लोगों ने देखी होगी। बावजूद इसके कि डा0 काशीप्रसाद ने 'काशी का इतिहास' लिखा है, काशी की पाण्डित्य परम्परा पर किताबें लिखी गई हैं, बहुत सी किताबें लिखी गई हैं। डा0 मोतीचन्द्र की मशहूर किताब है 'काशी का इतिहास'। इन तमाम चीजों के लिखे जाने के बीच आप चर्चा कर रहे हैं तो किस काशी की? तीन नाम काशी के हैं– एक है काशी, दूसरा है वाराणसी, आपने 'अंडरस्टैंडिंग वाराणसी' लिखा है। मेरा ख्याल है कि ये तीन नाम एक नाम के पर्याय नहीं है। सच्चाई तो यह है कि प्रयोग में और व्यवहार में सबसे पुराना है काशी। इसके बाद है बनारस और उसके बाद ये वाराणसी नाम आया है। भला हो बाबू सम्पूर्णानन्द का, कि उन्होंने, और आप इसी को प्रमाण दे सकते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय के बारे में ही देखें तो उसके एक नाम नहीं है दो नाम हैं– बी0एच0यू0 अंग्रेजी में लिखा जाता है और ईंटों पर का0वि0वि0 लिखा जाता है– काशी विश्वविद्यालय। तो इसी यूनिवर्सिटी का नाम अंग्रेजी में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी है और हिन्दी में ईंटों पर का0वि0वि0 का ठप्पा लगा होता है, आपका ध्यान गया होगा इस पर। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और ठीक इसके बरक्श़ काशी विद्यापीठ की स्थापना हुई बाद में और अंत में जो संस्कृत कालेज हुआ करता था, उसका नाम वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय हुआ; तो एक ही शहर में तीन बड़ी संस्थाएं अलग–अलग जगहों पे कायम हुई थीं जिनमें सबसे पुराना संस्कृत कालेज था जिसके साथ कोई नाम नहीं लगा हुआ था– संस्कृत कालेज था, न उसको बनारस संस्कृत कालेज कहते थे बल्कि उसे सिर्फ संस्कृत कालेज कहते थे जो बाद में वाराणसी से वाराणसेय

संस्कृत कालेज किया गया; तो जहाँ तीन–तीन नाम हों, इतने नाम बाकायदे मिलते हैं। इससे ये मालूम होता है कि एक, अगर नाम अलग–अलग हो तो उनके साथ रूप भी अलग–अलग बनते हैं। संस्थाओं के कारण नहीं, और इन नामों के साथ भी इतिहास जुड़ा हुआ है इसलिए वह इतिहास ही उनकी अलग–अलग शख्सियत और पहचान की ओर इशारा करता है और इसलिए ये मामला बहुत पेचीदा होता है। इन तमाम चीजों के बावजूद इतिहास के लोग अगर प्रयत्न कर रहे हैं तो वह प्राचीन काल और उसमें भी प्रीहिस्ट्री, प्रागैतिहासिक काल का बनारस और इतिहास का बनारस जिसमें प्राचीन भारत 'एंशियंट इण्डियन हिस्ट्री' वाले दूसरे ढंग से देखते हैं, 'मिडिवल' वाले इसे दूसरे ढंग से देखते हैं, 'माडर्न' अलग देखेंगे और इसके अलावा 'कन्टॅम्पर्री' अलग देखेंगे तो इन्हीं, यह एक लम्बा आख्यान है जो तीन दिन में तो समाप्त होने वाला नहीं है, बहुत बड़ा है और चुनौतीभरा हुआ काम है। मैं उसका एक खाका, एक नक्शा, क्योंकि यह दूसरी गोष्ठी होने वाली है। जो मेरा क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध भारतीय भाषाओं में बनारस से है। इसलिये कुछ ऐसे सवाल जो सामान्य रूप से उठते हैं उनकी ओर इशारा करके ज्यादा समय न लेकर, मुझे जो सचमुच कहना है और मेरे मन में जो चीजें उठती रही हैं उनको बेहतर है कि, चूंकि अध्यक्षता करनी है इसलिये फिर समय मिला तो मुख्य रूप से 'भाषा और साहित्य' में, लेकिन जो फ्रेम है जिस फ्रेम में देखने की बात की जा रही है उसमें जिन किताबों को मैंने पढ़ा है और जिनको पढ़ने के बाद मेरी धारणा बनी है वो यह है कि बनारस को लगभग, आप देखें तो, महिमामंडित करते हुए एक तीर्थ के स्थान पर, तीर्थ की तरह, जैसा है, जिसके एक दिव्य–काव्य रूप, जिसके खिलाफ आप एक शब्द नहीं बोल सकते हैं। अगर किसी आदमी, उम्मीद है कि जो समझा जायेगा वो देशद्रोही है। काशीद्रोही नहीं वह देशद्रोही है। हिन्दुत्व का दुश्मन है। क्योंकि यह हिन्दू तीर्थ के रूप में माना जाता है। ये और बात है कि मुसलमान भी यहाँ काफी रहते हैं। तो एक ओर महिमामंडित छवि है और आप तीन दिन की गोष्ठी, लगभग प्रशस्ति पाठ करते हुए गुजारिये और उसमें होड़ लगेगी कि कौन

आगे जाता है और ये काम करना हो तो इसके लिये दूसरे स्थान बने हुए हैं। देवस्थल हैं और आप देवस्थलियों में जाके यह काम कीजिये। लेकिन आप यदि विश्वविद्यालय के दायरे में बौद्धिक चिन्तन करना चाहते हैं तो एक और दूसरा खतरा है, जिसकी भावुकता– 'सेंटिमेंटलिज्म' लगाव, स्मृतियों के, जिसे मैं कहूंगा कि एक दूसरे की स्मृतियां जुड़ी हुई हैं– घरों से, परिवारों से, जगहों से, जिस जगह आप रहते हैं उस जगह से, पशु–पक्षी तक का लगाव हो जाता है – हम तो मनुष्य हैं। इसलिये दूसरा जो खतरा है जिसको भावुकता या सेंटिमेंटलिज्म कहें और उस, खासतौर से वे लोग जो पुश्त दर पुश्त, न जाने कितनी पीढ़ियों से, एक हजार साल से उनका खानदान यहां रहा है, और उससे पैदा हुआ है तो ये जो लगाव है, तो हजार दोष–गन्दगी तमाम चीजें हैं। एक शब्द हम बनारस के खिलाफ़ नहीं सुनना चाहेंगे। ये आत्मीयता– ये लगाव, जो जगह से होता है। पुश्त–दर–पुश्त रहा है यह दूसरी एक बड़ी बाधा है, इन तमाम चीजों के बावजूद..., तो दो खतरे, एक तो महिमामंडित करने वाला और दूसरा रागात्मक–भावात्मक लगाव जो अनिवार्यतः होगा लेकिन सबसे ज्यादा जिम्मेदारी, जो भावात्मकता से जो लगाव है; उन्हीं लोगों पर है। उन्हीं को ये हक भी हासिल है कि उसकी आलोचना कर सके उसकी गलतियों को देख सके। माँ को जिस तरह से हक है अपने बच्चों को जरा सी चूक पर चाँटा लगाने का उसी तरह से बच्चे को भी हक है अपनी माँ और बाप के बारे मे,ं अगर कहीं उनसे चूक होती है तो उसी तल्ख़ी के साथ, कहने का हक है। इसलिये हक उसी को बनता है जिसका लगाव है, आत्मीयता है, दूसरा उंगली उठाये उससे पहले हमको उसपे उंगली उठानी चाहिये। और अक्सर आप देखेंगे कि जिसे गहरा लगाव रहा है, उन्होंने ही बड़ी सटीक आलोचना बनारस के बारे में की है। उन रचनाओं को पढ़ने के बाद पता चला है, इसलिये ये दूसरा रास्ता है जिस रास्ते...और इतिहास के लोगों को एक तीसरा रास्ता जो..., आप अब भी महत्वपूर्ण यात्री है। काशी में नहीं है, प्रेम काशी में है मान लीजिये–दक्षिण काशी।

इसलिये काशी नाम से आप लोग देखेंगे, कुछ शहर हैं जो हमारे यहां आमतौर से लोगों के नाम के साथ इस तरह से जुड़े हुए हैं, लोगों के नाम, काशीनाथ तो हैं ही हमारे घर में, बनारसीदास भी होते थे, इसलिये काशीनाथ–बनारसी प्रसाद नाम ऐसे मिलेंगे आप को। प्रयाग से जुड़े हुए हैं। हर शहर के साथ आदमी को इस तरह से जोड़ दिया गया है कि सारी जो अस्मिताएं हैं हमारी, उसमें एकाकार हो जाती हैं ऐसी स्थिति में। तो एक ओर यह स्थिति है और दूसरी स्थिति जो विदेशी है, भारतीय नहीं है, जो बाहर से बनारस आये पर्यटक के रूप में आये। हमें यह भी देखना पड़ेगा इतिहासकार के नाते कि जो हमारे यूरोप से आने वाले कुछ यात्री और खासतौर से इंग्लैण्ड से आने वाले जो हमारे शासक थे, उन्होंने काशी को किस रूप में देखा; और जिस रूप में देखा, उसकी, एक इतिहासकार की जो वैज्ञानिक दृष्टि है, उसको फिर से जांचना परखना पड़ेगा, उसमें दोनों तरह की रचनायें आपको मिलेंगी, एक– महिमामंडित करने वाली भी है, विदेशी पर्यटक बनारस में आकर के, अभिभूत होकर के जाते हैं, बल्कि यहां की गंदगी भी उनको बहुत अच्छी लगती है, भीड़–भाड़ भी अच्छा लगता है, वो सारी चीजें पसंद आती हैं और इसके द्वारा जिसे मैं कहना चाहूंगा कि विदेशियों के लेखन की एक गहरी पड़ताल खासतौर से उस दौर में की जानी चाहिए। एडवर्ड सईद की 'ओरियंटलिज्म' नामक किताब लिखी गई। इस किताब के बाद ये जो तथाकथित ओरियंटलिज्म है, प्राच्यवाद है, विदेशी नज़र से भारत को देखा, उस नज़र की क्या सीमायें हैं, ये सचेत, जागरूक; एक जमाने में हम लोग उसे प्रमाणपत्र के रूप में पेश किया करते थे, कि देखो, अब भी बहुत दिन तक रहा है। मेगस्थनीज आया भारत देखकर गया, तो लोगों ने मेगस्थनीज की रिपोर्ट के आधार पर भारत का इतिहास लिखा है, बगैर सोचे कि वो आदमी जो बाहर से आया है वो सही है कि नहीं। जो आदमी, जो बाहर से आता है कुछ ऐसी चीजें उसकी नजर में पड़ती हैं, जिसे हम अभ्यस्त होने के कारण नहीं देख पाते, कहा गया है न कि 'अतिपरिचियात अवज्ञा'। अतिपरिचय से अवज्ञा पैदा होती है, वो उपेक्षा करते हैं, जिन चीजों को

रोज–रोज देखते हैं, उस पर हमारी नजर नहीं जाती, विदेशी आता है तो उसको खट से देख लेता है क्योंकि वो अपरिचित है। अतिपरिचय भी बाधक होता है, हम भारतीय हैं या हम बनारस के रहने वाले हैं इसलिए ये अभिमान कि हमीं बनारस को जानते हैं, दूसरा कैसे जान सकता है? इसलिए इतिहास में बहुत चीजों के साथ जो मेथडॉलॅजि है, पद्धति पर हम जो बहस करते हैं कि किस 'मेथड' से आप देखेंगे? समझने की कोशिश करेंगे और आप जानते हैं कि जब शास्त्रार्थ होता है तो हमारे यहाँ भी प्रमाण मीमांसा की चर्चा होती है, तो पहले ये होता है कि विचार कैसे करेंगे, ये बताइये? विचार तो बाद में आप करेंगे। वो क्या दृष्टि है? क्या पद्धति है? किस ढंग से आप विचार करेंगे। इस पर कुछ निबंध होने चाहिए थे, बहस होनी चाहिए। ये बुनियादी, क्योंकि जो 'हिस्टॉरिकल मेथड' है। आर्कियोलाजी का एक मेथड है, उसी तरह 'हिस्ट्री राइटिंग' का एक मेथड है, मैं देख रहा था कि सेमिनार में तमाम चीजों पर बात की गई है; लेकिन मेथडॉलॅजि पर तो चर्चा ही नहीं की गई है, जिस मेथडॉलॅजि से आप बनारस को समझने की कोशिश करेंगे, इसी विश्वविद्यालय ने राजघाट की खुदाई करवाई थी तो कुछ समस्यायें ऐसी हैं, जिसका सीधा संबंध आर्कियोलॉजी से है, इसी बनारस में सारनाथ भी है, और सारनाथ को एक प्रसिद्ध आर्कियोलॉजिस्ट ने खोज कर निकाला था, उसने एक रिपोर्ट भी लिखी है। बहुत जगहों की खुदाई अब आप नहीं कर सकते हैं, बस्तियां बस गई हैं, और इसलिए इतिहास बहुत कुछ भूमिगत है, कुछ गंगा जी की धारा में बह गया। आने वाली पीढ़ियों को माधवदास के धरहरा का पता नहीं चलेगा कि कहां था और माधवदास के धरहरा पर बहुत कुछ लिखा गया है। इसलिए मेथडॉलॅजि बहुत महत्वपूर्ण चीज है, बिना उस मेथडॉलॅजि पर विचार किये हुए समझने की कोशिश अगर हम कर रहे हैं तो समझने में दिक्कत है। दूसरी, संक्षेप में कहके मैं; क्यूँकि मैंने कहा कि 'साहित्य और भाषा' की जो चीजें हैं, उनकी ओर मैं बताना चाहूंगा कि भारत यानी काशी को समझने के सिलसिले में, प्रायः तीन बड़ी परंपरायें..., काशी एक तरह से पूरा भारत है, पूरे मुहल्ले को मिला करके देखें तो

एक काशी में शायद ही कोई मुहल्ला होगा, और बिल्कुल विभिन्न प्रदेशों के आधार पर। बांग्ला भाषी लोग हैं, मराठी भाषी लोग हैं, गुजराती बोलने वाले लोग हैं, पंजाबी बोलने वाले लोग हैं, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम बोलने वाला मुहल्ला है, साथ ही रहते हैं, कोई प्रदेश बचा नहीं, कश्मीरी लोग यहां भरे पड़े हैं, इसलिए आप कुल मिलाकर देखें तो सारे भारत के लोग। अधिकांश तीर्थों में ऐसा हुआ है कि वहाँ लोग जाकर बस गये हैं, लेकिन बनारस इस मामले में प्रयागराज से भी बड़ा; अखिल भारतीय एक शहर है, मेरी जानकारी में, जहाँ अच्छी संख्या में लोग है, मिशाल है छोटे में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जहाँ एक जमाने में प्रत्येक प्रांत के, प्रत्येक भाषा के सांस्कृतिक संगठन छात्रों के हुआ करते थे। आंध्रा के होते थे, मराठी के होते थे, बांग्ला के होते थे। अलग–अलग राज्यों के, प्रदेशों के, भाषाओं के यहाँ संगठन, छात्रों–छात्राओं के हुआ करते थे एक जमाने में। इसलिए जिस 'मल्टीकल्चरलिज्म' की, 'बहुसांस्कृतिकता' की आप बात करते हैं, वो अकेले बनारस और बनारस में भी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ही; इतनी दृष्टि प्रदान करती है जहाँ से बनारस को समझने का मतलब है पूरे भारत को समझना और ठोस जीवन्त रूप में समझना, नेताओं के भाषणों के रूप में नहीं कि सारा भारत यहाँ मौजूद है। ये कठिन समस्या है। मैंने इशारा किया था ऍडवर्ड सईद के 'प्राच्य विद्यावाद' के बारे में। वह आमतौर से...; काशी की छवि बनाई गई, प्राच्यविदों ने एक छवि बनाई थी और मैंने अपने गुरुदेव से सुना था कि एक विदेशी के मन में कल्पना थी कि काशी के बारे में, सोचा था तो उसका खयाल था कि प्रातःकाल सूर्योदय होने पर गंगा के तट पर सहस्त्रों लोग गंगा के किनारे जल लेकर के सूर्य को वो अर्घ्य देते हैं, दिखाई देते हैं, ये छवि लेकर के वह आया था कि काशी ऐसी होगी, पढ़ रखा था उसने। जैसे ही वो, और उसने कहा कि नाव लेकर के बनारस घूमने के लिए वह निकला, जैसे ही चला, तो बहरी अलंग में देखा कि प्रातःकाल में निपटने वाले लोग, लोटा लेकर के लोग बैठे हुए थे, तो उसने समझा कि ये लोग कोई पूजा–वूजा कर रहे हैं। मल्लाह थे, जो उसको दिखाने वाले थे, गाइड थे उन्होंने कहा कि नाव

उधर से लीजिए, अनर्थ हो जायेगा उनका भ्रम टूटेगा। तो ओरियंटल लोगों ने बनारस की एक छवि बनाई और सच पूछें तो ओरियंटल लोगों ने बनारस को एक धार्मिक नगरी के रूप में, तीर्थ के रूप में इसको रखा था और ये छवि बनारस के विरूद्ध साबित हुई। तीर्थ तो ये बन गया लेकिन बनारस के कला, कौशल और जो धंधे होते हैं, विद्या की नहीं, पूजा की नगरी बनाई। इसलिए उस 'ओरियंटलिज्म' के खिलाफ अच्छा खासा संघर्ष इतिहासकारों ने किया है, दावे लिखे हैं, 'अगेंस्ट ओरियंटलिज्म', 'बियॉन्ड ओरियंटलिज्म'। बनारस पर विचार करते समय 'बियॉन्ड ओरियंटलिज्म', विदेशियों के लिखे हुए किताबों को, लेखों को बहुत बारीकी से, जांच पड़ताल करके, उसकी समीक्षा की जानी चाहिए कि वो छवि हमारी नहीं है। उस आइने में जो हमारी तस्वीर दिखाई पड़ती है, जो आईना बहुत निर्मल (जोर देकर) नहीं है। एक दृष्टि विशेष से तैयार किया हुआ आईना है और उस आईने को अपनी मूल छवि मानने की गलती न करें। आखिरी बात जो मैं कहना चाहता हूं कि बनारस में धर्म और विचारधारा और संस्कृतियों की दृष्टि से देखें, तो मैं तो दूसरी परंपरा का..., की पायदान का आग्रह करने वाला एक अदना सा विद्यार्थी रहा। इसलिए ये शिव की नगरी है, तो उसी के साथ ये बुद्ध की भी नगरी है और महावीर की भी नगरी है। राजनीति में संपूर्णानन्द की नगरी है, कमलापति त्रिपाठी की है और साथ ही आचार्य नरेन्द्र देव, राजा राम शास्त्री की भी है और रूस्तम सैटिन की भी है और ये प्राचीन काल से चला आ रहा है कि वैदिक और अवैदिक दोनों परंपरायें काशी में रही है, कोई तो बात थी, ज्ञान भले ही गया में पैदा हुआ, बुद्ध ने, कुछ तो कारण रहा होगा कि अंत में अपना 'धर्मचक्रप्रवर्तन' करने के लिए काशी ही आये और कोई जगह नहीं। वो इलाहाबाद नहीं गये जबकि प्रयाग की महिमा कम नहीं है और जयशंकर प्रसाद ने एक जमाने में गंगा की शांत कछार को देखकर उस ''वसुधा की मंगलमयी उषा बनकर उमा उसमें आयी थी, जिसके नव.... अंचल में उषा ने भरी ललाई थी'' ये गीत गाया था, मूलगंध कुटी बिहार का जब पहली बार प्रवेश, मंदिर में किया गया तो यही गीत गाया गया था। तो उस गैरिक

अंचल के रूप में 'उषा की भरी ललाई थी', उस मंगलमयी उषा की भी नगरी काशी है और इसलिए इतिहास के, हेगेल के द्वंद्ववाद को आप माने या ना माने, 'डायलेक्टिक्स' को आप मार्क्स के हवाले करके आप छोड़ भले दें, लेकिन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ही, 'विरुद्धों का सामंजस्य' शब्द उन्हीं का दिया हुआ है, हिन्दी के थे; और मार्क्सवादी नहीं थे रामचन्द्र शुक्ल। ये विरुद्धों का सामंजस्य है काशी। विरुद्धों का 'सामंजस्य' जरूर जोड़िए, खाली विरुद्धों का शहर नहीं है, अखाड़ेबाजी की चीज नहीं है, जोर करते–कराते लोग हैं, उसे पटकना ही महत्वपूर्ण नहीं होता है, जोर का काम भी होता है। इसलिए 'विरुद्धों का सामंजस्य'। इकहरी तस्वीर बनायेंगे आप। बनारस की महिमा इस बात में है, वो..., इतनी समर्थ है; बनारस, ये काशी नगरी विशाल इसलिए है, कि इसमें दो विरोधी बड़ी ताकतों को भी अपने हृदय में जगह देने की गुंजाइश है। इकहरे शहर जो हैं नष्ट हो जाते हैं, अपने इकहरेपन के कारण, इसलिए इस जगह आप देखें तो एक ओर वैदिक परंपरा के पंडित और दूसरी ओर उसी रूप में अवैदिक परंपरा के भी उद्‌भट्ट विद्वान हैं यहां पर। पंडित गोपीनाथ 'कविराज' जो संस्कृत कालेज के पहले भारतीय हिन्दू प्रिंसिपल थे, उन्हें भी देखा होगा आप लोगों में से कुछ ने और उसके बाद तो मंगलदेव साहब थे, उन्होंने जो किताब लिखी है और उसे आचार्य नरेन्द्र देव जी ने पहली बार प्रकाशित करवाया था, मंगलदेव शास्त्री की 'वैदिक परंपरा' और वैदिक परंपरा में उनकी व्याख्या क्या है? वही नहीं, कविराज जी की भी वैदिक परंपरा की व्याख्या वही नहीं है जो आमतौर से वैदिक परंपरा के मीमांसक लोग जिस रूप में किया करते हैं वो अलग परंपरा है और यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है जिसमें सन्मार्ग परंपरा है, मीमांसा के लोग थे, चिन्नास्वामी शास्त्री संस्कृत कालेज में हुआ करते थे, साक्षात तमिल भाषी। और यही नहीं; जिन दो आदमियों का नाम लेना चाहूंगा, यद्यपि उन्होंने हिन्दी में भी लिखा है, वे हैं पंडित रामावतार शर्मा, प्रिंसिपल रह चुके हैं, विशेष आग्रह से पटना से कुमार जी महाराज ने बुलाया था और दूसरे पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, जो राजस्थान से आये थे, रहने वाले हिमाचल के थे। इन दोनों

को आप पढ़ें तो देखेंगे कि पाण्डित्य की एक दूसरी परंपरा है। यहीं रहकर 'बुद्धचर्या' नामक पुस्तक महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने विद्यापीठ में लिखी और आचार्य जी ने उसे प्रकाशित करवाया था। वे यहीं दुर्गाकुण्ड पर रहते थे, और संस्कृत पढ़ा करते थे। तो मैंने कहा कि यहां दोनों तरह की परंपरायें हैं और इसलिए 'विरुद्धों' के सामंजस्य के रूप में काशी को देखना चाहिए। 'को बड़ छोट' कौन छोटा कौन बड़ा है और सबसे बड़ी बात थी कि यहां इसी शहर में हिन्दी के लोगों का प्रतिक्रम याद रखना चाहिए कि अस्सी घाट पर अगर बाबा तुलसीदास थे, तो बनारस का एक मुहल्ला कबीर चौरा, जहां कबीर रहा करते थे, इसलिए कबीर और तुलसी दोनों हैं यहां, निर्गुण और सगुण दोनों हैं यहां, और जुलाहा और ब्राह्मण दोनों हैं यहां, ये परंपरायें हमारी, बताती हैं कि काशी के इतिहास से काशी की संस्कृति का जब तक वो मुरब्बा न बनेगा तब तक एक रूखा–सूखा इतिहास जो राजनैतिक इतिहास, आर्थिक इतिहास लिखेंगे, तो वह एक तरह का रेखांकन होगा, रंगों से रहित 'स्केच बुक' के रूप में आप पेश न करें बल्कि ये रंगारंग दुनिया है और विविधता बहुलता है, आप सब, बहुत लोग जानते हैं; ये विरुद्धों का सामंजस्य है। इतिहास में इन विरुद्धों के संघर्षों की कहानी केवल युद्धों के रूप में लिखी जाती है। युद्ध में ही केवल विरोधी संघर्ष नहीं होता है, जब युद्ध नहीं होते हैं तो शांतिकाल के जीवन में भी, ये दोनों विरुद्ध साथ–साथ रहते हैं एक दूसरे को संबल देकर चलते हैं और जीवन जीने लायक लगता है। हरा–भरा लगता है। भरा–पूरा लगता है।

मैंने बहुत समय आपका लिया। इन शब्दों के साथ मैं, मेरी ये मंगल कामना है कि इतनी महत्वपूर्ण संगोष्ठी का आयोजन इतिहास विभाग ने किया। निश्चय ही दो दिनों के विचार मंथन के दौरान कुछ न कुछ माखन तो निकलेगा ही, और जब निकले तो प्रकाशित होने के बाद हम लोगों को उसका स्वाद चखने का अवसर प्राप्त होगा। धन्यवाद।